* श्री हरिःशरणम् *

प्रातःकालीन

मैदानीय-रामकथा-मंडलकी वन्दना
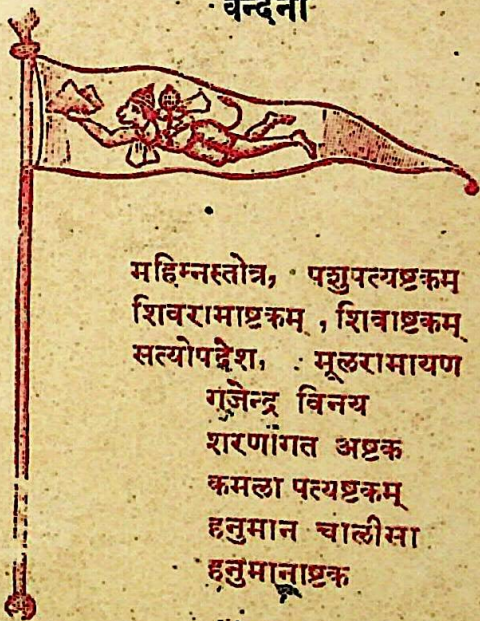
महिम्नस्तोत्र, पशुपत्यष्टकम
शिवरामाष्टकम , शिवाष्टकम
सत्योपदेश, मूलरामायण
गजेन्द्र विनय
शरणागत अष्टक
कमला पत्यष्टकम्
हनुमान चालीसा
हनुमानाष्टक

नमामि तं प्राकृतिराकृतेयम् ॥

संग्रहक—

पं० रामशरण शर्मा

प्रकाशक—

रामकथा मण्डल बोर्ड, कलकत्ता (मैदान)

* श्री हरिःशरणम् *

प्रातःकालीन वन्दना
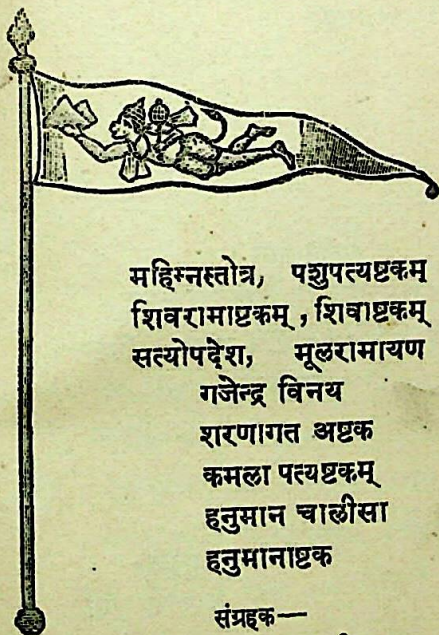
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

महिम्नस्तोत्र, पशुपत्यष्टकम्
शिवरामाष्टकम्, शिवाष्टकम्
सत्योपदेश, मूलरामायण
गजेन्द्र विनय
शरणागत अष्टक
कमला पत्यष्टकम्
हनुमान चालीसा
हनुमानाष्टक

संग्रहक—
रामशरण शर्मा

प्रकाशक—
रामकथा मण्डल बोर्ड, कलकत्ता (मैदान)

५०००]   संशोधित संस्करण   [सं० २००८

श्रीः

प्राक्कथन

पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास रचित—'राम चरित मानस' हिन्दी साहित्यकी निधि है। आदर्श राम चरित को नाना अलङ्कारोंसे विभूषित कर गोस्वामीजीने इसकी रचना की है तथा इसके पीयूषामृतको पानकर भक्त राम-पदानुरागी जन भवसागर पार उतरते हैं। ज्ञानी, अज्ञानी, मूर्ख और पण्डित सभी लोग रामचरित मानसके प्रसादपूर्ण पाण्डित्य पर मुग्ध हैं। 'राम चरित मानस' की मन्दाकिनी में स्नानकर भक्त जनोंके हृदयका कलुष दूर होता है।

इसलिये समस्त भारतके गाँव-गाँव और नगर-नगरमें रामायणकी कथा और प्रवचनके बहुल प्रचारकी आवश्यकता है।

उक्त उद्देश्यकी सिद्धिके लिये "मैदानीय राम कथा मण्डल" के जन्मदाता, रामायण प्रेमी, मनस्वी निस्पृह स्वर्गीय पं० हरस्वरूपजी शर्माने आजसे २०-२२ वर्ष पहले श्री वि० स० मारवाड़ी अस्पतालके मैनेजर साकेतवासी मनस्वी पं० अयोध्याप्रसादजी मालवीयको साथ लेकर किलेके मैदानमें महावीर-पताकाके साथ प्रातःकालीन चलती-फिरती रामकथाके रूपमें इसका वीजारोपण किया था। कोई भी श्रोता पाठ बोलता जाता और मालवीयजी उसका भावपूर्ण विश्लेषण करते जाते और श्रोताओंका झुण्ड मन्त्र-मुग्धकी तरह साथमें चलता रहता। इस प्रकार नित्य प्रातःकाल

विक्टोरिया मेमोरियलसे लेकर इडनगार्डेन तक राम-कथाका ही सामा बंधा रहता।

इसी समय मैं भी शर्माजीके सहयोगसे कलकत्ता पहुंचा और 'राम कथा मण्डल' में सम्मिलित हो गया। अब चौपाई मैं ही पढ़ने लगा और मालवीयजी उसकी व्याख्या करने लगे। श्रोताओंकी संख्यामें भी आशातीत वृद्धि हुई। इस वृद्धिके कारण कई भावुक श्रोताओं (विशेषकर बाबू रामदेवजी मुरारका) के अनुरोध से इडन-गार्डनमें ही बैठकर कथा होने लगी।

इसी समय पूज्य मालवीयजी क्षय रोगसे पीड़ित हो गए और मण्डलकी ओरसे भरसक प्रयत्न करने पर भी वे साकेतवासी हो गये। अब यह सेवा-भार मेरे ऊपर आ गया, यद्यपि मैं इसके योग्य न था, पर भावुक तथा प्रेमी श्रोताओंके अनुरोधसे मैं ही रामायणकी

व्याख्या करने लगा। श्रोताओंकी और भी वृद्धि हुई, जिनमें विशेष रूपसे बाबू रामधनदासजी झाझड़िया, रा० ब० रामदेवजी चोखानी, दीपचन्द्रजी पोद्दार आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

इस कथामें चढ़ावा चढ़ाना या कुछ भेंट करना वर्जित है, किन्तु बाहरके समागत रामायण के मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा समय-समय पर रामकथामृत पान कराया जाता रहा है और उनकी सेवा भी मण्डलकी तरफसे यथासामर्थ्य होती रही है, अब भी यही परिपाटी चली आ रही है।

इस कथासे कलकत्तेके विशेषकर मारवाड़ी समाजमें 'राम चरित मानस' का बहुत प्रचार हुआ है।

यह कथा किलेके आसपास बैठ कर हुआ करती है, मौसमके अनुसार गर्मीमें पूर्वमें बट

वृक्षके पास, सरदीमें उत्तरमें खुले स्थानपर तथा वर्षामें दक्षिणमें प्रिन्सेप घाटमें होती आरही थी, पर पिछले युद्धके कारण उक्त स्थान भी सुलभ नहीं रहे थे। अब इस कथाके प्रेमी इडन गार्डन के पुलिस कांस्टेबलोंने अपने रहनेके स्थानकी व्यवस्था कर इस समस्याको हल कर दिया है। अतः वे धन्यवादार्ह हैं, यहाँ तीनों ही मौसमोंमें कथाके लिये ठीक स्थान है। अब तो मण्डलने यहाँ एक स्थान भी बनवा लिया है, जिसमें वर्षामें भी कथामें बाधा नहीं होगी।

यह रामकथा प्रातः एक घंटा प्रतिदिन अविच्छिन्न रूपसे होती आ रही है, इसके इतिहासमें एक दिन भी ऐसा नहीं हुआ, जिस दिन कथा न हुई हो। वर्षाके कारण यातयातके रुक जानेपर भी श्रोता, वक्ता पहुँचकर कथा करते और सुनते हैं। पानी बरसनेमें भी खड़े-

खड़े कई वार कथा हुई है। इतने दिनोंसे सर्दी-गर्मी, वर्षाकी वाधाओंके कारण कितनी कठिनाइयाँ इसके चलानेमें होती हैं, उनका अनुभव तो वे ही सदस्य करते हैं, जो इसको तन-मन-धनसे बराबर चलाते आ रहे हैं। इस मण्डलके सदस्य सभी श्रेणीके गरीबोंसे लेकर बड़े-बड़े अमीरों तक हैं। सभी जाति-धर्म सम्प्रदाय वाले मारवाड़ी, बंगाली, बिहारी, पञ्जाबी, सिन्धी मद्रासी, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के हैं। मारवाड़ी और देशवाली जमादार पार्टी इसके मुख्य अंग हैं, जो इसको प्रारम्भसे चलाते आ रहे हैं। इस प्रकारसे भारतवर्षमें यह अपने ढंगकी एक ही संस्था है। आशुतोष भगवान् इसको चलाते रहें, यही कामना है।

इस संस्थाके तत्त्वाधानमें समय २ पर उत्सव भी होते रहते हैं। जैसे-श्रीरामनवमी,

जानकी नवमी, गुरु पूर्णिमा, तुलसी जयन्ती, हनुमज्जयन्ती, महाशिवरात्रि, श्रीरामार्चा यज्ञ। इस मण्डलके द्वारा प्रति सोमवारको भगवान् शंकरकी स्तुति महिम्न स्तोत्र द्वारा हुआ करती है और प्रति दिन जो वन्दना होती है, वह भी बड़ी भावमयी है जो इस पुस्तिका द्वारा होती है। यह प्रथम बार और दूसरी बार श्री बाबू रामचन्द्रजी शिवदत्तरायके व्ययसे प्रकाशित हुई। तीसरी बार अनेक आवश्यकीय स्तोत्र और विषयोंसे वर्द्धित हो-दो हजार कापी बाबू रामधनदासजी झाझड़िया तथा एक हजार बाबू बैजनाथजी भक्त फर्म - बंशीधरजी दुर्गादत्तके व्ययसे प्रकाशित हुई।

चौथी बार कागजकी महंगाईके रहते हुए भी तीन स्तोत्र और बढ़ाकर मण्डलके उद्योगसे बा० मंगतुरामजी जयपुरीयाके व्ययसे प्रकाशित

हुई, पाँचवां संस्करण भी मारवाड़ी समाजके व्यापार-कुशल एवं होनहार एक वैश्य युवकके व्ययसे दो हजार कापी प्रकाशित हुई।

छठाँ संस्कणर भी निरभिकामी मानस प्रेमियोंकी सहायतासे प्रकाशित हुआ और वह भी प्रेमीजनोंमें वितरण हो गया। इसकी गुप्त सहायता मण्डलको इसके पुराने सदस्य श्रीबाबू श्रीनिवासजी छावछरिया द्वारा प्राप्त हुई। इस बार सातवां संस्करण भी उदार चरित मानस प्रेमीके व्ययसे प्रकाशित हो रहा है।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है, वह यह कि रामकथा मण्डलके कई एक गुप्त सहायक सदस्य हैं। परिस्थितिवश दैनिक उपस्थितिमें सम्मिलित न होनेपर भी उनका मन और धन सदा मण्डलके साथमें है और प्रत्येक कार्यमें आगे रहते हैं। विशेषकर श्री बाबू माधवप्रसादजी

बिड़लाका नाम उल्लेखनीय है। मण्डलके पुराने सदस्य बाबू रामनारायणजी मोहता बाबू भैरवदान बियानीके द्वारा आपका ध्यान इधर आकर्षित हुआ। कई वर्षसे राम-कथाके व्यासों का सत्कार आपकी तरफ़से होता आ रहा है, इसके लिये मण्डल आपका धन्यवाद करता है।

समवेदना

मण्डलके पुराने सदस्य श्री बाबू मातूराम दासजी डालमियाँ की धर्मपत्नी और श्री बाबू रंगलालजी जाजोदिया की धर्मपत्नीके स्वर्गवास से मंडल को दुख हुआ है—

मंडल के सभी प्रकार के हितैषी श्रीमान् पं० उमादत्तजी शर्म्मा मालिक "रत्नाकर प्रेस" के होनहार एक मात्र पुत्र श्री पं० विधासागरजी एम० ए० का युवावस्थामें ही स्वर्गवास हो जानेसे मार्मिक आघात लगा है—

मण्डलके स्थायी सदस्य श्री बाबू मंगतराय जी रतेरिया तथा श्री बाबू रामेश्वर लालजी धूतके असामयिक निधन से महान दुःख हुआ है; अतः भगवान से प्रार्थना है कि वे दिवंगत आत्माओंको शान्ति एवं उनके संतप्त परिवारों को धैर्य्य प्रदान करे।

कृतज्ञता प्रकाश

दुर्भाग्यवश कई वर्षोंसे मेरे उदर व्याधि चल रही है, पिछली वार कलकत्तेकी यात्राके समय उसका वहुत ही प्रकोप बढ़ गया, मेरे अत्यन्त प्रेमी श्री बाबू जगन्नाथजी पुरुषोत्तम झुनझुनवाला तथा बाबू बनारसीदासजी रतेरिया ने अपने निवास-स्थान बालीगञ्जमें दो मासतक रखकर उत्तमसे उत्तम चिकित्साकी व्यवस्था की, किन्तु कोई लाभ न देखकर बाध्य हो मेरेको घर लौटना पड़ा। किन्तु मण्डलके सदस्योंकी

चिन्ता बढ़ चली, इसलिये सभी प्रेमियोंने कथा के अन्तमें मेरी शुभ कामनाके लिये प्रतिदिन एक मिनट रामधुन प्रारम्भ कर दी, और चिकित्सा के लिये आर्थिक सहायताका भी प्रबन्ध कर दिया, यह सहायता सर्व श्री बाबू मुन्नालालजी कानोड़िया, मातूरामदासजी डालमिया, वेणी माधवजी शुक्ल, श्री निवासजी छावछरिया, रामनारायणजी मोहता, भोलारामजी केडिया नन्दकिशोरजी झाझड़िया शिवदत्तरायजी धानुका हर्षराजजी लोढा परमेश्वरीप्रसादजी गुप्ता, रतीरामजी रतेरिया, बाबू नारायणजी कांइया, मुरारीलालजी छारिया आदि प्रेमियों द्वारा मण्डलके सदस्यों की तरफ प्राप्त हुई, यदि मेरे सुहृदजनोंकी यह सहायता न पहुंचती तो चिकित्सा और गृहस्थ का व्यय-भार वहन करना मेरे लिये कठिन ही नहीं असंभव हो

जाता। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि मण्डलका प्रत्येक सदस्य चाहे वह कैसी भी स्थितिमें है। तन मन धनसे मेरी आरोग्यताके लिये कटिवद्ध है, इस आध्यात्मिक एवं भौतिक सहायतासे सन्तुष्ट हो मैं प्रत्येक प्रेमी सदस्यके लिये कृतज्ञता पूर्वक भगवान्से मंगल कामना करता हूं और आशा करता हूं कि भगवान् मेरे प्रेमीजनोंसे पुनः समागम प्रदान करेंगे।

श्रीहरिः शरणम्

उत्सवोंके स्थान पर

इस संस्थाके तत्वाधानमें समय-समय पर उत्सव भी होते रहते हैं जैसे—

श्री रामनवमी, श्री जानकी नौमी, गुरु पूर्णिमा, तुलसी जयन्ती, हनुमज्जयन्ती, महा-शिवरात्रि, बसन्तोत्सव, होलिकोत्सव, श्री रामा-

चर्यायज्ञ, श्री राम संकीर्तन, इस बार मण्डल के प्रेमियोंने १४ करोड़ नाम जप भी किये हैं और प्रति नवरात्रमें वर्षमें दो बार श्रीराम-चरित मानसका नवाह्न पारायण सामूहिक रूप से और दोनों ही बार कमसे कम १४ करोड़ भगवन्नाम जप श्री हनुमानजी महाराज जो नामके बड़े ही प्रेमी है समर्पण किया जाता है।

श्रीहरिः शरणम्

धन्यवाद

इस बार सातवां संस्करण भी उदारचरित मानस प्रेमीके व्ययसे प्रकाशित हो रहा। है श्री बाबू श्रीकिशनदासजी बेरी वाले २५०० प्रतियाँ और श्री बाबू बैजनाथजी मालिक फर्म बाबू बलदेवदासजी बैजनाथ २५०० प्रतियाँ यह सहायता श्री बाबू मातूरामदासजी डालमियाँ

और श्री बाबू केशरदेवजी भोतिकाके उद्योगसे प्राप्त हुई है इसके लिये दाता और संग्रहकर्त्ता दोनोंही धन्यवादके पात्र हैं।

वन्दनाके इस सप्तम संस्करणका संशोधन काशीस्थ व्या० आ० पु० तीर्थ रा० समज्ञ पं० श्री केदारनाथ मिश्र ने किया है। इस महान कार्यके लिये मण्डल आपका आभारी है।

अक्षय तृतीया
सं० २००८ वि०

रामशरण शर्मा
मु० घुसकानी
पो० भिवानी
जि० हिसार

॥ श्रीः ॥

प्रातःकालीन मैदानवाली रामकथाकी प्रारम्भिक और अन्तिम वन्दना

प्रारम्भिक

[खड़े होकर]

* श्लोक *

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं,
तीर्थास्पदं शिव विरञ्चि नुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतिपाल भवाब्धिपोतं,

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ १ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं,

धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ॥

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत् ।

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥ २ ॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत,

स्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः ।

व०

मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे,
सदास्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा ॥ ३ ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम्,
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायक चारुचापं,
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ४ ॥

नमामि रामानुज पादपङ्कजम्,
वदामि रामानुज नाम निर्मलम्।

३

व०

स्मरामि रामानुज दिव्यविग्रहम्,
करोमि रामानुज पूजनं सदा ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं,
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं,
श्री रामदूतं शरणंप्रपद्ये ॥ ६ ॥

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं,
यः शोकवन्हिं जनकात्मजायाः ।

आदाय तेनैव ददाह लङ्कां,

नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७ ॥

अतुलित बलधामं, स्वर्णशैलाभदेहं,

दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

सकलगुणनिधानं, वानराणामधीशं,

रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥ ८ ॥

च०

६

(बैठकर)

सोरठा

जेहि सुमरत सिधि होइ, गणनोयक करिवर वदन ।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभगुण सदन ।। १ ।।
मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़ई गिरिवर गहन ।
जासु कृपा सो दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन ।। २ ।।
नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण बारिज नयन ।
करउ सो मम उरधाम, सदा क्षीर-सागर शयन ।। ३ ।।

कुन्द इन्दु सम देह, उमारमण करुणा अयन।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥
वन्दउँ गुरु-पद कंज, कृपासिन्धु नर-रूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥ ५ ॥

चौपाई

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी ॥
महावीर बिनवौं हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना ॥
शंभुप्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी ॥

व०

८

श्लोक

तत्रैव गंगायमुना त्रिवेणी, गोदावरी सिन्धु सरस्वती च।
सर्वाणि तीर्थाणि वसन्ति तत्र, यत्राच्युतोदार कथा प्रसंङ्गः ॥

दोहा

आओजी हनुमन्त विराजिये, कथा होत इतिहास।
तुम पायक रघुनाथके, मैं तोहि चरणनका दास ॥
जय शुकदेव मुनीशवर, यदुपतिदास अनन्य।
जयति वादरायण चरण, करन मोहि जगधन्य ॥

व०

श्रीतुलसीके पदकमल, बार बार शिरनाय ।
रामचरित मानस विमल, कथा कहौं चितचाय ॥

विबुध विप्र बुध गुरुचरण, बन्दि कहों कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मंजु मनोरथ मोरि ॥

अक्षर अर्थ न जानिहौं, नहिं कछु भजन उपाय ।
रामकथा कछु भाषिहौं, श्रीगुरु होउ सहाय ॥

रामायण प्रारम्भ सुनि, आये चतुर सुजान ।
सियो रामपद कमल युग, बन्दि बैठे हनुमान ॥

विसर्जन

दोहा

कथा विसर्जन होत है, सुनो वीर हनुमान।
निज आसन पर जायके, सदाकरो कल्याण ॥
कहेउ दण्डवत प्रभुहिं सन,तुमहिं कहो कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि ॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधीसे पुनि आध।
तुलसी चर्चा रामकी, कटैं कोटि अपराध ॥

रामचरण रति जो चहै, अथवा पद निर्वाण ।
भाव सहित सो यह कथा, करैं श्रवण पुटपान ॥

मुनि दुर्लभ हरि भक्तिनर,पावहिं विनहि प्रयास ।
जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मान विश्वास ॥

मो सम दीन न दीन हित,तुम समान रघुवीर ।
अस विचार रघुवंश मणि, हरहु विषम भवभीर ॥

कामहिं नारि पियारि जिमि, लोभहिं प्रियजिमि दाम ।
तिमि रघुवीर निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

व०

वारि मथै घृत होय बरु, सिकताते बरु तेल ।
बिनु हरिभजन न भव तरिहैं, यह सिद्धान्त अपेल ।।

सोरठा

जय हरि कृपा निधान, अधम उधारण बान जिन ।
गावत वेद पुरान, अस दयालु नहिं दूसरो ।।
हरिपद पोतहि पाय, अगम अथाह भवाम्बुधि ।
मोसम पतित निकाय, तरन चहत गोपद सरिस ।।

दोहा

हरिगुरुजयति मुकुन्दपद, निशिदिन मोहि अधार ।
जो अधमनकी अधमता, सुनिध्रुव करत उधार ॥

जो जन जहांसे आयहु, कथा सुनिहु मनलाय ।
सिया रामपद उर धरि, जाहु सकल हर्षाय ।।

छन्द

पाई न केहि गति पतित-पावन राम भजि सुनु शठ मना ।
गणिका अजामिल व्याध गीध, गजादि खल तारे घना ।।
आभीर यवन किरात खस श्वपचादि अति अघरूपजे ।
कहि नाम वारेक तेऽपि पावन होहिं राम नमामिते ।।

श्री शिव महिम्न स्तोत्रः प्रारम्भः

श्रीगणेशाय नमः ॥ पुष्पदन्त उवाच ॥

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी ।
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ॥
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन् ।
ममाप्येषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ् मनसयो
रतद्व्यावृत्त्यायञ्चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ॥
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

मधुस्फीता वाचः परममममृतं निर्मितवत
स्तव ब्रह्मन्किं वागपिसुरगरोर्विस्मयपदम् ॥
ममत्वेतां ः वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षा प्रलयकृ-
त्त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ॥
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं ।
विहंतुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं ।
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ॥
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः ।
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता ।
मधिष्ठातारं किंभवविधिरनादृत्य भवति ।।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरा
यतो मंन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ।।६।।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति ।
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिद मदःपथ्यमिति च ।।
रुचीनां वैचित्र्यादृजकुटिलनानापथजुषां ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसिपयसामर्णव इव ।।७।।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्मफणिनः।
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्॥
सुरास्तांतामृद्धिं दधति तु-भवद् भ्रू प्रणिहितां।
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वद्ध्रुवमिदं।
परोध्रौव्याध्रौव्ये जगतिगदतिव्यस्तविषये॥
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव।
स्तुवञ्जिह्वेमित्वां नखलु ननु धृष्टा मुखरता॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चोहरिरधः ।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ॥
ततोभक्तिश्रद्धा भरगुरूगृणद्भ्यां गिरिशयत् ।
स्वयं तस्थेताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्नफलति ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं ।
दशास्यो यद्बाहूनभृत-रणकण्डूपरवशान् ॥
शिरःपद्म श्रेणीरचितचरणाम्भोरुह बलेः ।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अमुष्यत्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनं ।
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ॥
अलभ्यापातालेऽप्यलसचलितांङ्गुष्ठशिरसि ।
प्रतिष्ठात्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

यदृद्धिं सूत्राम्णो वरद परमोच्चैरपिसती ।
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ॥
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो—
र्नकस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अकाण्डब्रह्मांण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा ।
विधेयस्या-सीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः ॥
सकल्माषः कंठे तव न कुरुते न श्रियमहो ।
विकारोपिश्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

असिद्धार्थानैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे ।
निवर्तन्तेनित्यं जगति जयिनोयस्यविशिखाः ॥
स पश्यन्नीश त्वामितर सुरसाधारणमभूत ।
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

महीपादाघाताद्व्रजति सहसासंशयपदं ।
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भु जपरिघरूग्णग्रहगणम् ॥
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृत जटाताडिततटा ।
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणित फेनोद्गमरुचिः ।
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ॥
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि ।
त्यनेनैवोन्नेयं धृत महिमदिव्यं तव वपुः ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ॥
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि—
र्विधेयै क्रीडन्त्यो न खलुपरतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

हरिस्ते साहस्त्रं कमलवलिमाधाय पदयो—
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ॥
गतोभक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा ।
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१६॥

क्रतौसुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्मप्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ॥
अतस्त्वां संप्रेक्ष्यक्रतुषु फलदानप्रतिभुवं ।
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

क्रियादक्षोदक्षः क्रतुपतिरधीश स्तनुभृता
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ॥
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुषु फलदान व्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतमसुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।।२२।।

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमन्हाय तृणव—
त्पुरः प्लुष्टंदृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।।
यदि स्त्रैणं देवी-यमनिरतदेहार्धघटना
दवैति त्वामद्धावत वरद मुग्धा युवतयः ।।२३।।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः ॥
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापिस्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः ।
प्रहृस्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ॥
यदालोक्याह्लादं हृद इव निमज्यामृतमये ।
दधत्यंतस्तत्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

त्वमर्कस्त्वंसोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह—
स्त्वमापस्त्वंव्योमत्वमु धरणिरात्मा त्वमितिच ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतिगिरं ॥
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपिसुरा
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ॥
तुरीयं ते धामध्वनिभिरवरुंधानमणुभिः ।
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमितिपदम् ॥२७॥

भवश्शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपिम् ।
प्रियायास्मै धाम्नेप्रणिहित नमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

नमोनेदिष्ठाय प्रियदवदविष्ठाय च नमो—
नमः क्षो दिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ॥
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो—
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२९॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवायनमोनमः ।
प्रबलतमसे यत्संहारे हराय नमोनमः ॥
जनसुखकृते सत्त्वोत्पत्तौ मृडाय नमोनमः ।
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥३०॥

कृशपरिणति चेतःक्लेशवश्यं क्वचेदं ।
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ॥
इति चकितममंद्रीकृत्यमां भक्तिराधाः—
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

असितगिरिसमंस्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे ।
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमूर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले—
र्ग्रथित गुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो ।
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत् ।
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ॥
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र ।
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः—
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥
दीक्षादानं तपस्तीर्थम् ज्ञानंयागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशु शशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ॥
स खलु निज महिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा—
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं ।
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः ।
स्तवनमिदमोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन ।
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ॥
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन ।
सुप्रीणितो भवति भूतपति महेशः ॥३९॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकर पादयोः
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥४०॥

इति श्रीपुष्पदन्तगन्धर्वराजविरचितं श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ श्रीः ॥

पशुपत्यष्टकम्

पशुपतीन्दुपतिं धरणीपतिं-
भुजगलोकपतिं च सती पतिम् ॥
प्रणत भक्त जनार्ति हरं परं-
भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ १ ॥

प०

अ०

३६

न जनको जननी न च सोदरो-

न तनयो न च भूरिवलं कुलम् ॥

अवति कोपि न कालवशं गतं—

भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ २ ॥

मुरज डिंडिम वाद्य विलक्षणम्

मधुर पंचमनाद विशारदम् ॥

प्रमथ भूतगणैरपिसेवितं-

भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ३ ॥

शरणदं सुखदं शरणान्वितं-
शिवशिवेतिशिवेति नतं नृणाम् ॥
अभयदं करुणा वरुणालयं-
भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ४ ॥

नर शिरो रचितं मणि कुण्डलं-
भुजगहार मुदं वृषभध्वजम् ॥
चितिरजो धवलीकृत विग्रहम्-
भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ५ ॥

मख विनाशकरं शशि शेखरं-

सततमध्वर भाजि फलप्रदम् ॥

प्रलय दग्ध सुरासुर मानवं-

भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ६ ॥

मदमपास्यचिरं हृदिसंस्थितं-

मरण जन्म जराभय पीड़ितम् ॥

जगदुदीक्ष्य समीप भयाकुलम्-

भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ७ ॥

हरि विरंचि सुराधिप पूजितं-
यमजनेशधनेश नमस्कृतम् ॥
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं-
भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥ ८ ॥

पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतम्-
विरचितं पृथिवीपति सूरिणा-
पठति संशृणुते मनुजः सदा-
शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीपशुपत्यष्टकम् सम्पूर्णम ॥

॥ श्री ॥

❀ शिवरामाष्टकम् ❀

शिवहरे शिवराम सखे प्रभो,

त्रिविध ताप निवारण हे विभो।

अज जनेश्वर यादव पाहिमाम्,

शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥१॥

कमल लोचन राम दयानिधे,

हरगुरो गजरक्षक गोपते ।

शिवतनो भव शंकर पाहिमाम्,

शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥२॥

स्वजन रञ्जन मङ्गल मन्दिरम्,

भजति ते पुरुषः परमम् पदम् ।

भवति तस्य सुखम् परमाद्भुतम् ।

शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥३॥

जय युधिष्ठिर वल्लभ भूपते,
जय जयार्जित पुण्य पयोनिधे ।
जय कृपामय कृष्ण नमोस्तुते,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥४॥

भव विमोचन माधव मापते,
सुकवि मानस हंस शिवारते ।
जनकजारत राघव रक्षमाम्,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥५॥

अवनि मण्डल मङ्गल मापते,
जलद् सुन्दर राम रमापते ।
निगम कीर्त्ति गुणार्णव गोपते,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥६॥

पतित पावन नाम मयीलता,
तव यशो विमलम् परिगीयते ।
तदपि माधव माम् किमुपेक्षसे,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥७॥

अमरता परदेव रमापते,
विजय तस्तव नाम घनोपमा ।
मयि कथम् करुणार्णव जायते,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥८॥

हनुमतः प्रिय चाप कर प्रभो,
सुर सरिद्धृत शेखर हे गुरो ।
मम विभो किमु विस्मरणम् कृतम्,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥९॥

नरहरे रतिरंजन सुन्दर,
पठति यः शिवराम कृतस्तवम् ।
विशति रामरमा चरणाम्बुजे,
शिवहरे विजयम् कुरुमे वरम् ॥१०॥

प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेकाग्र मानसः ।
विजयो जायते तस्य विष्णुमाराध्य माप्नुयात् ॥

॥ इति ॥

॥ श्रीः ॥

॥ अथ शिवाष्टकम् ॥

नमामीश मीशान निर्वाणरूपं,
विभु व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं,
चिदाकाश माकाश वासं भजेहं॥

शिवा-

निराकार मोंकार मूलं तुरीयं,
गिराज्ञान गोतीत मीशं गिरीशं ।
करालं महाकाल कालं कृपालं,
गुणागार संसार पारं नतोहं ॥
तुषाराद्रिसंकाश गौरं गभीरं,
मनोभूत कोटि प्रभाश्री शरीरं ।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा,
लसद्भाल बालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं,
प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं।
मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं,
प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं,
अखण्डं अजं भानुकोटि प्रकाशं।
त्रयःशूल निर्मूलनं शूलपाणिं,
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ॥

शिवा-

कलातीत कल्याण कल्पान्त कारी,
सदा सज्जनानन्द दाता पुरारी।
चिदानन्द सन्दोह मोहापहारी,
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न यावत् उमानाथ पादारविन्दं,
भजन्तीहलोके परे वानराणां।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं,
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ॥

छक

४६

न जानामि योगं जपं नैव पूजां,
नतोहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ।
जराजन्मदुःखौघताताप्यमानम्,
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥

रुद्राष्टक मिदं प्रोक्तं, विप्रेण हर तोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या, तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥

॥ हरिः ॐ ॥

श्री सत्य उपदेश

१—रात को जल्दी सोना और सवेरे जल्दी उठना, यह आरोग्य, बल, बुद्धि और धनदायक है।

२—बैठकर समय खराब मत करो, भजन करो या उद्यम करो।

३—महंगी से महंगी क्या चीज है? रामका नाम ; और

सस्ती से सस्ती क्या चीज है? राम का नाम।

स० उ० ५२

४—सत्य बोलने के बराबर कोई तप नहीं है।

५—जो जबानको वशमें रखते हैं, उनको स्वर्ग प्राप्त होता है।

६—सबसे बड़ा शस्त्र कौनसा है? क्षमा और दया।

७—मारो तो किसको मारो? क्रोध को।

८—जिसके क्रोध है, उसको शत्रुकी क्या जरूरत है?

स०

९—जिन्दगी भरका आराम नगद लेना और नगद देना है, अगर किसीको सन्तोष हो तो।

१०—उपाय करनेसे दरिद्रता नहीं रहती और भजन करने से पाप नहीं रहता।

११—इस देहमें एक छिपा हुआ शत्रु क्या है? आलस्य, और दूसरा शत्रु कौन है? जो झूँठी तारीफ आकर करे।

१२—जिन्होंने गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण न पढ़ी

और उनके अनुसार बर्ताव न किया, तो उनको बहुत दुःख भोगने पड़ेंगे।

स० ५० उ० ५४

१३—जिन मनुष्योंमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील और गुण नहीं हैं, उनके बोझसे पृथ्वी दुखी होती है।

१४—जो नर वचन कहकर फिर जावे, वह जीवित मुर्दा समान है।

१५—अच्छे अमीर रईसोंके पास जानेसे अक्ल बढ़ती है और फ़ायदा भी होता है, गुण भी आता है, परन्तु ऐसे अमीर थोड़े हैं।

स्व०

१६—लाभ क्या चीज है? गुणवानोंकी संगति और धन क्या चीज है? विद्या।

१७—भेष बहुत हैं, पर साधु थोड़ें हैं।

१८—दूसरे पर विपत्ति आनेपर दुर्जन सुखी होते हैं और सज्जन सहायता देते हैं।

१९—मर्दकी कसौटी क्या है? जो पराई स्त्रीसे बचे। जो पुरुष पर-स्त्रीसे भोग करते हैं, उनके यदि देवोंकी करोड़ों पूजा की हो वह, और जप, तप

सर्वनाश हो जाते हैं। पांव-पांव पर ब्रह्महत्याका महापाप लगता है।

म० उ०

२०—दानी किसको कहते हैं? सबकी सोचे और सत्य बोले।

२१—विद्या पढ़े हैं, नम्रता नहीं है, तो कुछ नहीं है।

२२—ब्याह (शादी), मौत, जिन्दगीमें कम रुपया लगाना चाहिये, जो पीछे खाल न खींची जाय, और खाने-कमानेको रुपया मौजूद रहे।

स० ३० ५७

२३—जितने विषय हैं, उन्हें विषके समान जानो।

२४—कपड़ा और जेवर अपनी औरतोंको अपनी हैसियत से ज्यादा न पहिनाना चाहिये।

२५—राजा महाराजाओंको चाहिये कि उनकी प्रजा दुःख न पावे, उनका सबसे बड़ा धर्म यही है।

२६—राजाओंको ऐसा मन्त्री और दीवान रखना चाहिये, जिससे राजा भी प्रसन्न रहे और प्रजा भी।

२७—स्त्रीको पतिकी सेवासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

स०

दान, व्रत, तीर्थयात्रा भी पतिके साथ या पतिकी आज्ञासे करे ।

उ० ५८

२८—जो स्त्री पराये पुरुषके साथ इच्छा तृप्त करती है, वह दूसरे जन्ममें शीघ्र विधवा होती है, यदि फिर करे तो तीसरे जन्ममें कुतिया बनती है ।

२९—हम जो बुरा काम करते हैं, उसे अन्तर्यामी भगवान् देखते हैं। इसलिये सोच समझके करना चाहिये ।

स्व०

३०—पापका नतीजा देखना हो, बड़े अस्पतालमें जाकर देखो।

३१—उत्तम क्रोध जैसे जलकी लकीर, मध्यम क्रोध एक पहरका, कनिष्ट क्रोध तीन पहरका और पापी क्रोध तो सदैव रहता है।

३२—जो नौकर मालिकको खुश रखेगा, वह खुद भी खुश रहेगा।

३३—जो दूसरेका बुरा चाहता है, वैसा उसका ही होता

उ०

५६

है, यकीन न हो तो करनेवालोंको देखो या करके देख लो।

३४—सत्य उपदेश सब बीमारियोंकी दवा है। इसके पढ़नेसे पापसे बचोगे, पापसे सब बीमारी होती है और बीमारीसे आयुष्य क्षीण होती है।

अथ मूलरामायणम्

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥१॥
कोन्वस्मिन्साम्प्रतंलोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥२॥
चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकः प्रियदर्शनः ॥३॥

आत्मवान्को जितक्रोधोद्युतिमान्कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥४॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥५॥
श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञोवाल्मीकेर्नारदो वचः ।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहंबुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥७॥

मू०

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥८॥
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥९॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥१०॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभ लक्षणः ॥११॥

रा०

६३

मू०

धर्मज्ञःकृतज्ञःसत्यसंघश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञान सम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।।
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः ।
रक्षिता जीव लोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।।१३।।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ।।१४।।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।।१५।।

मू०

सर्वदाऽभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥

स च सर्वगुणोपेतः कौशल्याऽऽनन्दवर्द्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥

रा०

६५

मू०

ज्येष्ठं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् ।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः ।
तस्याभिषेकसंभारान्दृट्वा भार्याऽथ कैकयी ॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत ।
विवसनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् । २२॥
स सत्यवचनाद्राजा धर्मं पाशेन संयत ।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥

मू०

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥

रा०

६७

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धन ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रातामनुदर्शयन् ।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमाहिता ॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥

मू०

सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।
पौरैरनुगतो दूर पित्रा दशरथेन च ॥२८॥

रा०

६८

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत्।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२६॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया।
ते वनेन वनं गत्वा नदी स्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात्।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥

मू०

देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् ।
चित्रकूटं गते रामे पुत्र शोकातुरस्तदा ।।३२।।
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् ।
गते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ।।३३।।
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ।।३४।।
गत्वा तु सुमहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ।।३५।।

त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् ।
रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशः ॥३६॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः ।
पादुकेचास्य राज्यायन्यासंदत्वा पुनः पुनः ॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ।
स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया ।
गते तु भरते श्रीमान्सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥३९॥

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च ।
तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥
प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः ।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभंङ्गं ददर्श ह ॥४१॥
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा ।
अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥४२॥
खड्गं च परमप्रीत स्तूणी चाक्षय्यसायकौ ।
वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥४३॥

ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम् ।
स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदावने ॥४४॥
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् ।
ऋषणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥४५॥
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी ।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥४६॥
ततः शूर्पणखावाक्यातुद्युक्तान्सर्वराक्षसान् ।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥४७॥

निजधान रणे रामस्तेषां चव पदानुगान ।
वने तस्मिन्निवसतां जनस्थाननिवासिनाम् ॥४८॥
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश ।
ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ।
वार्यमाणः स बहुशो मारीचेन स रावणः ॥५०॥
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते ।
अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥

मू०

जगाम सहमारीचस्तस्याश्रम पदं तदा।
तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥५२॥

जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम्।
गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३॥

राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः।
ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥

मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह।
कबन्धं नाम रूपेन विकृतं घोरदर्शनम् ॥५५॥

तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः ।
स चास्मै कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६॥
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव ।
सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७॥
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः ।
पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह ॥५८॥
हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः ।
सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबल ॥५९॥

मू०

आदितस्ताद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः ॥
सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् ॥
ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च ॥
प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२॥
वालिनश्च वलं तत्र कथयामास वानरः ॥
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥

राघवप्रत्ययाथ तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् ॥
दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम् ॥६४॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ॥
पदांगुष्ठेन निक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
विभेद च पुनस्तालान्सप्तैकेन महेषुणा ॥
गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥
ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः ॥
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहांतदा ॥६७॥

मू०

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिंगलः ॥
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ॥
निजघान च तत्रैव शरणैकेन राघवः ॥६९॥
ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे ॥
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
स च सर्वान्समानीय वानरान् वानरर्षभः ॥
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥

मू०

ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान् वली ॥
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
तत्र लङ्कां समासाद्यपुरीं रावणपालिताम् ॥
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकागताम् ॥७३॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ॥
समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥
पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि ॥
शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागतम् ॥७५॥

मू०

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् ॥
मर्षयन् राक्षसान्वीरो मन्त्रिणस्तान् तदृच्छया ॥७६॥

रा० ८०

ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् ॥
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् ॥
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ॥
समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥

मू०

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ॥
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ॥
रामः सीतामनुप्राप्य परां ब्रीडामुपागमत् ॥८१॥
तामुवाच ततो रामः पुरुषं जनसंसदि ॥
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगत कल्मषाम् ॥
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥

रा०
८१

मू०

सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ॥
बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदेवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ॥
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोदह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् ॥
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ॥
भरतस्यान्तिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥

रा०
८२

मू०

रा०

८३

पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा ॥
पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
नन्दिग्रामेजटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ॥
रामः सीता मनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
हृष्टः प्रमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ॥
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९०॥
नपुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषा क्वचित ॥
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रता ॥९१॥

न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः ॥
न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा ॥
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च ॥९३॥
नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा ॥
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा यथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् ॥
असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥९५॥

मू०

राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः ॥
चातुर्वर्ण्यं च लोकेस्मिन्स्वे स्वेधर्मे नियोक्ष्यति ॥९६॥
दशवर्षसहस्राणि दशर्षशतानि च ॥
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ॥
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः ॥
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमि-
पतित्वमीयात् ॥

वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि
महत्त्वमीयात् ॥१००॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
एकैकमक्षरं पुँसां महापातक नाशनम् ॥१०१॥

इति मूलरामायणम् ।

अथ गजेन्द्र विनय

श्रीसुकदेवजीने कहा—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमंजाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥१॥

ऐसा निश्चय कर, बुद्धिसे मनको हृदयमें स्थिरकर, अर्थात् विषयों से समेटकर, गजेन्द्र अपने इन्द्रद्युम्न नामक जन्ममें अभ्यास किये हुए श्रेष्ठ स्तोत्रको जपने लगा॥ १ ॥

गजेन्द्र कहने लगा :—

नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधिमहि ॥ २ ॥

जिन (चेतन रूप) से यह (देहेन्द्रियादिक) चेतन हो जाता है, पुरुष (शरीरोंमें कारणरूपसे प्रविष्ट) आदि, (प्रकृति) और बीज (पुरुष) रूप, परेश (स्तवन्त्र), भगवानको हम मनसे नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

यस्मिन्निद यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥३॥

जिन (अधिष्ठान) में यह (संसार) रहता है, जिन (उपादान-कारण) से यह (संसार) होता है, जिन (कर्त्ता या साधन) से यह (संसार) बनाया जाता है, जो आप (संसार) हो जाते हैं और जो इस (स्थूल कार्य) से और उस परले (सूक्ष्म कारण) से परे या श्रेष्ठ हैं, उन स्वयम्भू (स्वतः सिद्ध) भगवानकी मैं शरण जाता हूँ ॥ ३ ॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययाऽर्पितं
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

जो अपनेमें ही अपनी मायासे बनाये हुए, कभी (सृष्टिके समय, स्थूल कार्यरूपसे) प्रकट और कभी (प्रलयके समय सूक्ष्म-कारणरूपको) लीन, उन कार्य-कारणरूप दोनोंको अलुप्त दृष्टि साक्षी होकर देखते हैं, वे आत्ममूल (स्वयंप्रकाश) पर औरोंको प्रकाशित करनेवाले (चक्षु आदि) के भी पर (प्रकाशक) भगवान् मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

कालेन पञ्चमितेषु कृत्स्नशो
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदासीद् गहनं गभीरं
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

ग०

वि०

६०

(दूसरे परार्धके अन्तरूप) काल पर सब (चौदह) लोकों और उनके पालकों (ब्रह्मादि शरीरों)के पाँच महाभूतोंमें मिल जाने और (महतत्त्वादि) सब हेतुओंके (प्रकृतिमें लीन हो जाने) पर उस समय गहरा और अनन्त (प्रकृति नामक) तम रह गया था, उसके भी जो परे अर्थात् उससे अनभिभूत होते हुए उसके भी आश्रय हैं, वे विभु (व्यापक) भगवान् सब ओर विराजते हैं ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-
र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ॥ ६ ॥

(सत्वप्रधान) देवता और ऋषि भी जिनके स्वरूपको यथावत् नहीं जानते, उनको और कौन (रजस्तमःप्रधान, तत्त्वसे अनजान, अर्वाचीन) प्राणी जान सकता या वर्णन कर सकता है ? जैसे भांति भांतिके स्वांग लानेवाले नटके तत्त्वको लोग नहीं जान सकते। इस प्रकार जिनका चरित्र या वर्णन हमारी पहुंचके बाहर है, वे भगवान् मेरी रक्षा करें

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं
विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने
भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥

गा०

जिनके मंगलमय स्वरूपको देखनेकी इच्छावाले, (स्त्री-पुत्रादि और शब्दादि विषयोंसें) आसक्ति-रहित, प्राणियोंको अपने समान देखनेवाले, अच्छे हृदयवाले, अकारण दयालु, बनके (रहनेवाले) मुनिलोग अव्रण (अछिद्र अर्थात् अविच्छिन्न अथवा निर्दोष) अलोकव्रत (ब्रह्मचर्यादि, जिनका फल किसी लोककी प्राप्ति नहीं है, अर्थात् मोक्ष है) करते हैं, वे भगवान् मुझे मिलें ॥ ७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा
न मामरूपे गुणदोष ए (मे) व वा ।

तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः
स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

(हम लोगोंकी भांति) जिनके (प्रारब्ध कर्मके अधीन) जन्म, कर्म, नाम, रूप, गुण और दोष नहीं है, तो भी जो लोगोंकी उत्पत्ति और प्रलयके लिये अपनी मायासे उन जन्मादिको समय-समय पर स्वीकार करते हैं, ऐसे—

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥९॥

—ब्रह्म (परिपूर्ण) अनन्त शक्तिवाले, रूप रहित, बहुरूप (संसार-सृष्टि आदि) अद्भुत कर्म करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार है ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिण परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

अपने आपसे प्रकाशित होनेवाले, साक्षी (प्रकाश रूप)परमात्मा (जीवोंको नियमन करनेवाले) और वाणी, मन और चित्तकी वृत्तियोंकी पहुँचके बाहर भगवान्‌को नमस्कार है ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

विवेकी पुरुषसे सत्व गुण और निवृत्ति धर्म द्वारा प्राप्त होने योग्य मोक्षके स्वामी अर्थात् देनेवाले मोक्ष सुखके अनुभवरूप-॥ ११

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय सौम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

—शान्त (सत्व प्रधान), घोर (रजःप्रधान), मूढ़ (तमः प्रधान) सत्वादि गुणधर्मोंका अनुकरग करने वाले तथापि विशेष रहित और इसलिये विषमतारहित ज्ञानधन (चिद्रूप) भगवान्को नमस्कार है ॥ १२ ॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।

पुरुषात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्र (शरीरेन्द्रियादि सङ्घात) को जाननेवाले, सबके स्वामी साक्षी, पुरुष (सबके) अन्तर्यामी आत्मा (क्षेत्रज्ञ) के मूल और सबके

यहां तक कि प्रकृतिके मूलकारण अथवा मूल प्रकृतिरूप भगवानको नमस्कार है ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे
असताच्छाययो(या)क्ताय सदाभासायते नमः ॥१४॥

सब इन्द्रियों और उनके विषयोंके देखनेवाले, सब (प्रमाण, संशय, विपर्य आदि) प्रत्ययों प्रतीतियों या ज्ञान)के कारण असत, (जड़ देहेन्द्रियादि सङ्घात) और छाया (अविद्या) इनसे (प्रति-

बिम्बसे) बिम्बकी भांति सूचित, ('अक्ताय') इस पाठान्तरमें, छाया अर्थात् अध्यायसे युक्त, अर्थात् अध्यायसे अधिष्ठान) सदाभास (कार्यदेहेन्द्रियादिमें जिनका आभास है, अथवा विषयोंमें जिनका सद्रूप आभास है, ऐसे भगवान्को नमस्कार है ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
निष्कारणायाद्भुतकारणाय
सर्वागमाऽऽम्नायमहार्णवाय
नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

गo

सबके कारण, आप अकारण (कारण होकर भी विकार-रहित होनेसे, मृदादि लौकिक कारणोंसे), अनोखेकारण (पंचरात्रादि) आगम और आम्नाय (वेदों) के (नद्यादि स्रोतोंको) महासमुद्रकी भांति (पर्यवसान भूमिरूप), मोक्षरूप और परायण, (उत्तम पुरुषोंके आश्रय) भगवान्को नमस्कार ॥ १५ ॥

वि०
१००

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय
तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम
स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

सत्वादि गुणोंरूप अरणीसे ढकी हुई (चिज्जीवसमष्टिरूप) अग्निको (संहारकालमें) पीने, अर्थात् अपनेमें समेटकर रखनेवाले, अथवा गुणरूप अरणीसे चिदूष्मप (ज्ञानाग्नि) को ढकेलनेवाले, उन वाले, उन (गुणों) के क्षोभ (कार्य) के समय विस्फूर्जित (बहिर्वृत्तिक) मनवाले, नैष्कर्म्य (आत्मतत्त्व) की भावनासे जो विधि-निषेध-क्षण) आगमोंसे निवृत्त हो चुके हैं, (उन ज्ञानियों) में आप ही जिनका प्रकार है, इन भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥

माद्दक्प्रपन्नपशुपाशविमोणाय
मुक्ताय मूरिकरुणाय जमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-
प्रत्यग्दृशे भगवते वृहते नमस्ते ॥१७॥

मेरे जैसे शरणात पशु और पशुकी भांति अविद्यासे बंधे हुए की पाश (अविद्या) को छुड़ानेवाले, मुक्त, बड़े दयालु, अलय (नाश और उपलक्षणसे जन्मसे रहित), अपने अंश (अन्तर्यामिरूप) से सब प्राणियोंके मनमें प्रतीत जो आत्म-दृष्टि उस रूप वृहत् (अपरिच्छिन्न) आप भगवान्को नमस्कार है ॥ १७ ॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-
र्दुष्पापणाय तुणसंगविवर्जिताय ।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय
ज्ञानात्मने भगवते नमः ईश्वराय ॥१८॥

देह पुत्र, प्रामाणिक या बड़े लोग, घर, धन और मनुष्योंमें आसक्तपुरुषोंसे कठिनता प्राप्त होने योग्य, गुणोंमें आसक्तिसे रहित मुक्तात्मा (देहादिमें अनाशक्त) लोगोंसे अपने हृदयमें निरन्तर चिन्तित ज्ञानरूप भगवान् ईश्वरको नमस्कार ॥ १८ ॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तनामा
भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।

किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं
करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१६॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको चाहनेवाले जिनको भजनेसे अपने मनोरथको नहीं पाते; किन्तु जो उनको (बिना चाहे हुए) भोग और अनश्वर देह भी देते हैं, अपार करुणा वाले भगवान् मेरा संसार और मगरसे छुटकारा मात्र कर दें, अधिक मैं नहीं चाहता ॥ १६ ॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं
वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।

अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥२०॥

जो भगवान्‌की शरणमें आ चुके हैं (अथवा सर्वज्ञ मुक्त पुरुषोंकी सेवा कर चुके हैं) और उनके एकान्त (अनन्य) भक्त हैं, वे धर्म अर्थ, काम, मोक्षमें से किसी अर्थको नहीं चाहते हैं, किन्तु अत्यन्त अलौकिक सुमङ्गल रूप उन्हींके चरित्रको गाते हुए आनन्दके समुद्रमें डूब जाते हैं ॥२०॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-
मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।

अतिन्द्रियं सूक्ष्ममिवानिदूर-
मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

अक्षर (क्षयरहित) ब्रह्म (भीतर-बाहर व्यापक), पर सर्वोत्तम, परेश, (ब्रह्म आदिके नियन्ता), अव्यक्त (छिपे हुए तो भी) आध्यात्मिक (भक्ति), योगसे प्राप्त होने योग्य, बहुत दूरकी वस्तुकी भाँति इन्द्रियोंकी पहुंचके बाहर और सूक्ष्म, अन्त (नाश) रहित, आद्य (सबके कारण) परिपूर्ण भगवान्‌की स्तुति करता हूं ॥ २१ ॥

गा०

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नामरूपविभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ॥२२॥

वि० १०७

ब्रह्मादि देवता, वेद और स्थावर-जङ्गम लोक नाम रूपके भेदसे जिनके छोटे-से अंशसे ही बन गये हैं—

यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो
निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो
बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥

—जैसे स्वप्रकाश अग्निसे ही चिनगारियाँ और सूर्यसे किरणें बारम्बार निकलती और मिट जाती हैं, वैसे बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, देवादि शरीरसङ्घात-यह गुणपरिणाम प्रपंच जिन भगवान्से निकलता है और जिन्हींमें लीन हो जाता है।

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्
स स्त्री न षण्डो न पुमान्न जन्तुः।
नायं गुनः कर्म न सन्न चासः
न्निषेधसेषो जयतादशेषः ॥२४॥

वे (सबके मूलकारण भगवान्) न देवता, न दैत्य, न मर्त्य (मनुष्य); न तिर्यक् (पशुपक्ष्यादि), न स्त्री, नपुंसक न पुरुष जन्तु (स्त्रीपुन्नपुंसक लक्षणरहित (न गुण, न कर्म, न सत्, न असत् हैं, किन्तु निषेधशेष (सब देवादि प्रपंचके निषेधकी अवधि-रूपसे शेष रह जाते) हैं और (माया) अशेष (सर्वरूप) हैं—ऐसे भगवान् मुझे छुड़ानेके लिये प्रकट हों ॥ २४ ॥

जीजीविषे नाहमिहामुया कि-
मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।

इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव—
स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

मैं मगरसे छुटकर जीना नहीं चाहता। इस संसारमें भीतर बाहर (अविवेकसे) लिपटी हाथीकी योनीसे क्या प्रयोजन है ? किन्तु आत्मरूप प्रकाशको ढकनेवाले जिस लिङ्गशरीर या अज्ञानका ज्ञान बिना काल पाकर भी नाश नहीं होता, उस लिङ्गशरीर या अज्ञानकी निवृत्ति चाहता हूं ॥ २५ ॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परंपदम् ॥२६॥

वह मैं (मुमुक्षु) संसारके रचनेवाले संसाररूप, संसारसे भिन्न, संसार जिनका वेदस् (धन अर्थात् क्रीड़ा सामग्री) है। संसारके अन्तर्यामी, अज (जन्मादि विकार रहित) ब्रह्म (सर्वव्यापक); (सर्वोत्तम); पद (प्राप्तव्य वस्तु) भगवान्‌के आगे (केवल) प्रणत हूं (जानता तो उनको नहीं हूं) ॥ २६ ॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोस्म्यहम् ॥२७॥

योग (भगवद्धर्म) से जिनके कर्म जल चुके हैं; ऐसे योगी योग

से शुद्ध हृदयमें जिनका साक्षात्कार करते हैं, उन योगसे (योगफल-

दाता) के आगे मैं नत हूं ।। २७ ।।

नमो नमोस्तुभ्यम सह्यवेग-
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ।। २८ ।।

जिनका (रागादि लक्षण) वेग रुक नहीं सकता, ऐसी सत्त्वादि तीन जिनकी शक्तियां हैं, ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है । बुद्धिके सब

(संशय-विपर्ययादि) गुण (वृत्तियां) जिनसे उत्पन्न होते हैं उन भगवान्‌को नमस्कार है। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, जिनकी शक्तियां दुरन्त हैं और खोटी (विषयाभिमुख) इन्द्रियवालोंको जिनका मार्ग भी नहीं मिल सकता, ऐसे आपको मेरा नमस्कार हो ॥ २८ ॥

नायं वेद स्वमात्मानंयच्छक्त्याहंधिया हतम्
तं दुरत्ययमाहाम्त्यं भगवन्तमितोस्म्यहम् ॥२६॥

जिनकी (अविद्या नामक) शक्तिसे (देहेन्द्रियादिमें) अहबुद्धिसे हत (आवृत्ति) अपने आत्माको यह जन (मैं) नहीं जानता है (हूं)

और जिनके माहात्म्य (प्रभाव) का कोई अतिक्रम नहीं कर सकता, ऐसे भगवान्‌की मैं शरण आया हूं ॥ २६ ॥

श्री सुकदेवजी कहने लगे—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिऽमानाः
नैतेयदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥

इस प्रकार जब गजेन्द्रने भगवान्के निर्विशेष स्वरूपकी स्तुति की जिसमें ब्रह्मादिके-से चतुर्मुखत्वादि किन्हीं विशेष चिन्होंका वर्णन नहीं था, तो ब्रह्मादि देवता इस अभिमानसे उसकी सहायताको न आये कि हमारी स्तुति तो इसने की ही नहीं है, प्रत्युत इसने तो 'यस्य ब्रह्मादयो......' आदि (श्लोक २२) कहकर हमको तुच्छ बतलाया है। भगवान् तो सर्वात्मक होने से सब देवता-स्वरूप ठहरे, इसलिये (हरिमेधाः और हरिणीके पुत्र) हरि नामक रूपसे गजेन्द्रको छुड़ानेके लिए प्रकट हुए ॥ ३० ॥

तं ददृदार्तमुपलभ्य जगन्निवास
स्तोत्रं निशम्यदिविजै सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुहयगान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु युतो गजेन्द्रः ॥३१॥

गजेन्द्र को उस प्रकार मगरसे सताया हुआ जान, उसकी की हुई स्तुतिको सुन, (मगरके मुँहको फाड़नेके लिये) चक्र ले स्तुति करते देवताओंके साथ छन्दोमय (वेदरूप इच्छा समान वेग वाले) गरुड़पर चढ़, जगत्के आश्रय भगवान् तुरन्त वहाँ आये, जहाँ गजेन्द्र था ॥ ३१ ॥

गं०

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणाखिलगुरो भवन्नमस्ते ॥३२॥

वि०

सरोवरके भीतर बड़े बलवान मगरसे पकड़े हुए और पीड़ित गजेन्द्रने, आकाशमें गरुड़पर चढ़ चक्र उठाये हरि भगवान्‌को देख, (भेंट करनेको) सूंड़से वहांके कमल ले, सूंड़को उछालकर बड़े कष्टसे कहा कि 'हे नारायण ! सबके गुरु !! हे भगवान् !!! आपको नमस्कार है ॥ ३२ ॥'

तं वीक्ष्य पीड़ितमजः सहसाऽवतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
सम्पश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥३३॥

भगवान् हरिने उस गजेन्द्रको पीड़ित देख, गरुड़ भी मन्दगामी है—इस विचारसे उससे भी तुरन्त उतरकर देवताओंके देखते-देखते बायें हाथसे सूंड़ पकड़कर गजेन्द्रको ग्राह सहित सरोवरसे निकाल लिया और दाहिने हाथके चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़कर गजेन्द्रको छुड़ाया ।

स्तुतिका फल

इस स्तुतिका पाठ करनेवालेको स्वर्ग और यश मिले, कलियुग के पाप मिटें, खोटे सपने आदि न आवें, प्रातःकाल उठकर पाठ करने वालेकी मृत्युके समय निर्मल बुद्धि हो जावे।

॥ श्रीः ॥

मनोकामना

* दोहा *

मणि मुक्ता चाहों नहीं, नहीं राज सन्मान।
मैं चाहूँ सच्चरितयुत, जीवन शुद्ध महान ॥ १ ॥

म०

कायर बनूँ अधर्म ढिग, अरु सुधर्म ढिग वीर।
सम्पत्ति में विनयी बनूँ, विपतिं समय में धीर ॥ २ ॥
बालक सम मेरी रहे, निर्मल मति गति नित्य।
छल प्रपंच तज सत्ययुत, करौं सदा शुभ कृत्य ॥ ३ ॥
इन्द्रियगण अरु मन रहे, नित मेरे वश माहिं।
काम क्रोध मद लोभ के, होउँ कबहूँ वश नाहिं ॥ ४ ॥
ऐसी देहु उदारता, करि करुणा प्रभु मोहि।
सबको देखूँ एक सम, कबहुं न भूलूँ तोहि ॥ ५ ॥

उपदेश

* दोहा *

सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घटमें संचरे, सब तन कञ्चन होय ॥
जब ही नाम हृदय धरयो, भयो पापका नाश ।
मानो चिनगी अग्निकी, परी पुराने घास ॥

उ०

लेनेको हरि नाम हैं, देनेको अन्न दान।
तरनेको आधीनता, डुबनको अभिमान॥

दे०

१२३

सुखके माथे सिल पड़ो, जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी, जो पल पल न जपाय॥

राम नाम जाना नहीं, पाला सकल कुटुम्ब।
धन्धे ही में पचि मरा, वार भई नहिं बुम्ब॥
कबिरा हरिके नाममें, बात चलावे और।
तिस अपराधी जीवको, तीन लोक कीत ठौर॥

उ०

राम नामको सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिं छाड़िये, राम नामकी टेक॥

दे०

१२४

राम नामको सुमिरते, अधम तरैं संसार।
अजामिल, गनिका सुपच, सदना सबरी नार॥

बाहर क्या दिखराइये, अन्तर जपिये राम।
कहा काज संसारसे, तुझे धनीसे काम॥

रग रग बोले रामजी, रोम रोम रङ्कार।
सहजे ही धुनि होत है, सो ही सुमरन सार॥

राम नामको सुमर ले, हँसि कै भावैं खीज ।
उलटा सुलटा ऊपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥

दे०
१२५

कबिरा मुख सो ही भलो, जा मुख निकसै राम ।
जो मुख रामनाम न निकसै, सो मुख है किस काम ॥

कथा कीरतन कलि विषे, भवसागरकी नाव ।
कह कबीर या जगतमें, नाहीं और उपाव ॥
देह धरेका फल यही, भज मन कृष्णमुरार ।
मनुष जनमकी मौज यह, मिले न बारम्बार ॥

उ०

पर निन्दा पर द्रोहमें, दिया जनम सब खोय।
कृष्ण नाम सुमरा नहीं, तिरना किस विध होय॥

दे०

धन यौवन यों जायँगे, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भज, क्यों चाटै जगधूर॥

१२६

नारायण सतसङ्ग कर, सीख भजनकी रीत।
काम, क्रोध, मद, लोभमें, गई आवल बीत॥
धन विद्यागुण आयु बल, यह न बड़प्पन देत।
नारायण सोई बड़ा, जाका हरिसों हेत॥

उ०

विद्या वित्त स्वरूप गुण, सुत दारा सुख भोग ।
नारायण हरि भक्त बिन, यह सब ही है रोग ॥

दे०

१२७

दो बातनको भूल मत, जो चाहत कल्याण ।
नारायण इक मौतको, दूजे श्री भगवान ॥

नारायण हरि लगनमें, यह पाँचो न सुहात ।
विषय भोग निद्रा हँसी, जगत प्रीत बहु बात ॥

सेवाको दोनों भले, एक सन्त इक राम ।
राम जु दाता मुक्तिके, सन्त जपावैं नाम ॥

९०

ग्रन्थ पन्थ सब जगतके, बात बतावत तीन।
राम हृदय मनमें दया, तन सेवामें लीन॥

दे० १२८

तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र किये दान।
मन पवित्र हरि भजनमें, होत त्रिविध कल्याण॥

राम नाम जपते रहो, जब लगि घटमें प्राण।
कबहुं तो दीनदयालुके, भनक परैगी कान॥

एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल हरिनाम है, चातक तुलसीदास॥

श्री शरणागत अष्टक

तात की बात को मानि के राज को,
वीथी के ठीकरे ज्यों ठुकरायो।
पुत्र वियोग सों देखे दुखी गुरु,
कालके गाल सों काढ़ि के लायो॥

हाथी की एकहि हाँक सुनी उठि,
धावन की नाईं पावन धायो।
आवन पायो न दूसरी हाँक मैं,
याहि सुनि शरणागत आयो ॥ १ ॥

काटे कठोरता सों दशकण्ठ के,
कण्ठ कठोर जो चाप चढ़ायो।
ताहि के भाई के भाल में राज को,
टीको सिरा निज कण्ठ लगायो ॥

गर्भ में अर्भक भूप परीच्छित,
पै जब द्रोणि ने बाण चलायो।
राखि लियो निज चक्र की छाँहिं में,
याहि सुनि शरणागत आयो ॥ २ ॥

देखि सुदामा कूं द्वार खरयो दुखि,
भागि के भेटि के भाव जनायो।
आँखिन में जल रोध भयो गल,
मीति को नेह न चित्त समायो ॥

श०

भिल्लीके हाथ के चाखिके बेर दो,
मात के हाथ को भोग भुलाये।
मा कि गति दई डाइन को मैं तो॥
याहि सुनी शरणागत आयो॥ ३॥

पाहन की भई गौत्तम नारिकूं,
पांयन धूरिसों चेत करायो।
बालक के तपसों अति रीझिके,
धाम अडौरु दियो मन भायो॥

अ०
१३२

आपुनो नाम अजामिल के मुख,
सों सुनि पाछिलो दोष भुलायो।
कण्ठ सों कालको फांस कढ़ायो मैं,
याहि सुनि शरणागत आयो ॥ ४ ॥

भील सों भाई की नाईं मिले,
निज डील सों डील मिलाय सिरायो।
रूपकी रूरीको आयुकी पूरी को,
जाति की कूरीको मान बढ़ायो।

शा० | अ० १३४

मेवा मिठाई सों नाक चढाइ के,
दासी के हाथ को साग सरायो।
भावके भूखे हो भात के नाहिं मैं,
याहि सुनी शरणागत आयो ॥ ५ ॥

लाखके भौनमें राख भये हुते,
राखिके पांडु को वंश बचायो।
बालक खातिर पाहन फोरिके
हे हरि! केहरि रूप बनायो।

मारि विनोद विनोद में राक्षस,
मोद सूं भक्त कूं गोद खिलायो ।
आरत को एक तूहि उबारत,
याहि सुनि शरणागत आयो ॥ ६ ॥

देखि जटायु कूं धूरि पर्‍यो मग,
अंक भर्‍यो अंसुबानि नुहायो ।
प्राण गये लखि रोये घने पुनि,
अन्तमें तात सो नातो निभायो ॥

भीर पड़ी जब द्रौपदि पै तब
चीर समुद्र को तीर न पायो।
भीर परे पर साथी तुही मैं तो,
याहि सुनी शरणागत आयो ॥ ७ ॥

मीरा के साथ रहे दिन रात,
दल्यो उत्पात जो भूप पठायो।
भात भर्‌यो नरसीको निरालो तू,
सांवल साह के बोल बिकायो।

श०

छीपा की छान छवाई छिपै दिन,
छेम सों छोह की छांह बिठायो।
नेह को नाता निभाय सदा तू मैं,
याहि सुनि शरणागत आयो ॥ ८ ॥

अ०

दोहा

मैं तो सब विधि दीन हूँ, भक्ति-भाव से हीन।
काम क्रोधमें लीन हूँ, लम्पट विषयाधीन ॥

तुम्हें रिझावन की प्रभु, मोपै एक न रीत।
तुम रीझो निज रीति सों, याहि एक परतीत॥
बँध्यो मोह की श्रृङ्खला, तुमको रह्यो पुकार।
हे हरि इस निज दासको, लीजै शीघ्र उबार॥

यह शरणागत नामको अष्टक—कष्ट निवार।
'तुलसी' जो याको पढ़े, उपजै शांति अपार॥

प्रेम-पदावली

श्री रघुवीरकी यह बानि।
नीच हूँ सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि।
परम अधम निषाद पाँवर कौन ताकी कानि?
लिये सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि।

प्रे०

गीध कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सानि ?
जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दिया जल निज पानि।
प्रकृति मलिन कुजाति सवरी सकल अवगुन खानि।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि बखानि ॥

रजनीचर अरु रिपु विभीषन सरन आयो जानि।
भरत ज्यो उठि ताहि भेटत देह दसा भुलानि ॥
कौन सुभग सुशील बानर जिनहिं सुमिरत हानि ॥
किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आनि ॥

प०

१४०

राम सहज कृपालु कोमल दीन हित दिन दानि ।
भजहिं ऐसे प्रभुहिं तुलसी कुटिल कपट न ढानि ॥

भज मन रामचरण सुखदाई ।

जिहिं चरणन से निकसि सुरसरि शंकर जटा समाई ।
जटा शंकरी नाम पर्यो है त्रिभुवन तारन आई ॥
जिहिं चरणनकी चरण पादुका भरत रह्यो लवलाई ।
सोई चरण केवट धोय लीने तब हरि नाव चलाई ॥

प्रे० सोई चरण सन्तन जन सेवत ःसदा रहत सुखदाई। प०
सोई चरण गौतम ऋषिनारी परशि परमपद पाई। १४२
दण्डकवन।ःप्रभु पावन किन्हों ऋषियन त्रास मिटाई।
सोई।ःप्रभु त्रिलोकके स्वामी कनक मृगा संग धाई

कपि सुग्रीव बंधु भय व्याकुल तिनजय छत्र फिराई।
रिपुको।ःअनुज विभीषण निशिचर परशत लङ्का पाई॥
ःशिव सनकादिक अरुब्रह्मादिक शेष सहस मुख गाई।
तुलसीदास मारुत सुतकी प्रभु निज मुख करत बड़ाई।

प्रे०

सुनेरी मैंने निर्बलके बल राम।

पिछली साख भरूँ सन्तनकी अड़े सँवारे काम॥

प०
१४३

जब लग गज बल अपनो बरत्यो नेक सरे नहिं काम।
निर्बल होय बलराम पुकार्‌यो आयो आधे नाम॥

द्रुपद सुता निर्बल भइ तादिन गह लायो निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई बसनरूप भये श्याम॥

अपबल तपबल और बाहुबल चौथा बल है दाम।
सूर किशोर कृपाते सब बल हारेको हरि नाम॥

प्रे०

जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे।

काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे ॥

प०

कौन देव बरियाय विरद हित हठि हठि अधम उधारे।

१४४

खग मृग, व्याध-पषान, विटप जड़ जवन कवन सुर तारे ॥

देव-दनुज मुनि नाग मनुज सब माया विवस विचारे।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपन पौ हारे ॥

मैं नित भक्तन हाथ बिकाऊँ।

आठों याम हृदयमें राखौं, पलक नहीं बिसराऊँ ॥

प्रे०

कल न परत वैकुण्ठ बसत मोहिं, योगिन मनन समाऊँ।
जहँ मम भक्त प्रेम-युत गावहिं तहाँ बसत सुख पाऊँ॥

भक्तन की जैसी रुचि देखौं, तैसोहि वेष बनाऊँ।
टारों अपने बचन भक्त लगि तिनके बचन निभाऊँ॥

ऊँच नीच सब काज भक्तके, निज कर सकल बनाऊँ।
पद धोऊँ रथ हाँकौ, मांजो बासन छानि छवाऊँ॥

माँगौं नाहिं दाम कछु तिनते, नहिं कछु तिन सताऊँ।
प्रेम सहित जलपत्र पुष्प फल, जो देवें सो खाऊँ॥

निज सर्वस्व भक्तको सौंपो, अपनो स्वत्तव भुलाऊँ॥

भक्त कहैं सो करौं निरन्तर, बेचें तो बिक जाऊँ॥

श्री हरिःशरणम्

श्रीरामजी के प्रगट होने के समय की बधाई

चैत्र शुक्ल ९

कुंवर अवधेश प्यारे की सदा जय हो सदा जय हो ।।टेक।।
तरिणि कुल के दुलारे की सदा जय हो सदा जय हो ।।१।।

मास मधुपक्ष उजियारे नौमि मध्याह्न अंगारे ।
प्रगट भये कौशल्या वारे सदा जय हो सदा जय हो ।।२।।

साधु सुर नाग नर गाजैं अनेको बाजने बाजै।
सबहिं मंगल कलश साजैं सदा जय हो सदा जय हो ॥३॥

देव बनि कौतकि आये अनेकों खेल दिखराये।
निछावरि पाय सब गावें सदा जय हो सदा जय हो ॥४॥

जो भी इस समय आते पदारथ चारिहूँ पाते।
कुमार है मगन गाते सदा जय हो सदा जय हो ॥५॥

श्री रामनारायणजी की आरती

आरती श्री रामायण जीकी,
कीरति कलित ललित सिय पी की ।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ।
बालमीक विज्ञान विशारद ।
सुक सनकादि शेष अरु शारद,
बरनि पवन सुत कीरति नीकी ।। १ ।।

गावत वेद पुरान अष्टदश,
छओ शास्त्र सब ग्रन्थनको रस।
मुनि जन धन सन्तनको सरबस,
सार अंस संमत सब ही की॥ २॥

गावत सन्तत सम्भु भवानी,
अरु घट सम्भव मुनि विज्ञानी।
ब्यास आदि कवि बर्ज बखानी,
कागभुसुण्डी गरुड़ के ही की॥ ३॥

रा०

कलिमल हरनि विषय रस फीकी,
सुभग सिंगार मुक्ति जुवती की।
दलन रोग भवमूरि अमी की,
तात मात सब बिधि तुलसी की ॥४॥

कमलापत्यष्टकम्

भुजङ्गतल्पगलं घनसुन्दरम्,
गरुड़वाहनमम्बुज लोचनम् ।
नलिनचक्रगदाकरमव्ययम्,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥ १ ॥

अलिकुलासितकोमल कुन्तलम्,
विमल पीतदुकूलमनोहरम्।
जलधिजाश्रितवामकलेवरम्,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥२॥

किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि
किमुत्तम तीर्थ निषेवणैः।
किमुत्त शास्त्र कदम्ब विलौकनैर
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥ ३ ॥

मनुज देहमिमं भुवि दुर्लभम्,
समधिगम्य सुररपि वाञ्छितम् ।
विषयलम्पटतामपहाय वै,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥४॥

न वनिता न सुतो न सहोदरो,
नहिं पिता जननी नच बान्धवः ।
व्रजति साकमनेन जनेन वै,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥५॥

सकलमेव चलं सचराचरं
जगदिदं सुतरां धन यौवनम् ।
समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतम्,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥६॥

विविधरोग युतं क्षण भंगुरम्,
परवशं नवमार्गमलाकुलम् ।
परीनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकम्,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥७॥

मुनि वरैरनिशं हृदि भावितम्,
शिवविरिंचि महेन्द्रनुतं सदा ।
मरण जन्म जरा भय मोचनम्,
भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥८॥

हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमम्,
परमहंस जनेन समीरितम् ।
पठित यस्तु समाहित चेतसा,
व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम् ॥९॥

श्री हनुमानजी के जन्मोत्सव

कार्तिक कृष्ण १४

स्तुति

बजरङ्ग बली मेरी नाव चली जराबल्हि कृपाकी लगा देना।
मुझे रोगने शोकने घेर लिया मेरे तापको नाथ मिटा देना।
मैं तो जन्म से आपका दास हूँ सेवक और बालक धर्मसे हूं।
बेशर्म विमुख निज कर्मसे हूँ चित्तसे मेरा दोष भुला देना।
दुर्बल हूँ दीनहूँ गरीबहूँ मैं निज कर्म क्रिया गत क्षीण हूँ मैं।

बलवीर तेरे आधीन हूँ मैं मेरी बिगड़ी हुई को बना देना।
बलदेके मुझे निर्भय कर दो यश शक्ति मेरी अक्षय कर दो।
सुखमय मेरा जीवन कर दो संजीवन लाय पिला देना।
करुणानिधि आपका नाम भी है शरणागत यह एकदास भी है।
इसके अतिरिक्त एक काम भी है सियारामसे मोहि मिला देना।

॥ श्री ॥

अथ हनुमान चालीसा

दोहा—श्री गुरुचरण सरोजरज निजमन मुकुर सुधार ।
वरणों रघुवर विमल यश, जो दायक फलचार ॥
बुद्धिहीन तनु जानिकै, सुमिरौं पवन कुमार ।
बल बुद्धि विद्या देहु मोहिं हरहु कलेश विकार ॥

ह०

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुणसागर ।
जय कपीश तिहुंलोक उजागर ॥
रामदूत अतुलित बलधामा ।
अंजनिपुत्र पवनसुत नामा ॥
महावीर विक्रम बजरङ्गी ।
कुमति निवार सुमतिकर सङ्गी ॥
कंचन वर्ण विराज सुवेसा ।
कानन कुण्डल कुञ्चित केशा ॥

चा०

१६०

हाथ वज्र अरु ध्वजा विराजै।
कांधे मूंज जनेऊ छाजे॥
शंकर सुवन केशरीनन्दन।
तेज प्रताप महा जगवन्दन॥

विद्यावान गुणी अतिचातुर।
रामकाज़ करिबेको आतुर॥
प्रभु चरित्र सुनिबेको रसिया।
रामलषन सीता मन बसिया॥

ह०

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा ।
विकट रूप धरि लंक जरावा ॥
भीम रूप धरि असुर संहारे ।
रामचन्द्रके काज सँवारे ॥

लाय संजीवन लषण जियाये ।
श्री रघुवीर हर्षि उर लाये ॥
रघुपति कीनी बहुत बड़ाई ।
तुमप्रिय भरतसरिस मम भाई ॥

चा०
१६२

सहसबदन तुम्हरो यश गायो ।
असकहि श्रीपति कण्ठ लगायो ॥
सनकादि ब्रह्मादि मुनीशा ।
नारद शारद सहस अहीशा ॥

यम कुबेर दिगपाल जहांते ।
कवि कोविद कहि सकै कहांते ॥
तुम उपकार सुग्रीवहि कीन्हां ।
राम मिलाय राजपद दीन्हां ॥

दो० १८   चा० १६४

तुम्हरे मन्त्र विभीषण माना।
लंकेश्वर भयो सब जग जाना॥
युग सहस्र योजन जन भानू।
लीला ताहि मधुरफल जानू॥

प्रभु मुद्रिका मेल मुख माहीं।
जलधि लांघि गये अचरज नाहीं॥
दुर्गम काज जगतके जेते।
सुगम अनुग्रह तुम्हर तेते॥

राम दुआरे तुम रखवारे।
होत न आज्ञा बिन पैसारे॥
सब सुख लहै तुम्हारी शरना।
तुम रक्षक काहूको डरना॥

आपना तेज सम्हारो आपै।
तीनों लोक हांकते काँपै॥
भूत पिचाश निकट नहिं आवै
महावीर जब नाम सुनावै॥

नाशै रोग हरै सब पीरा।
जपत निरन्तर हनुमत बीरा॥
संकटसे हनुमान छुड़ावै।
मनक्रम वचन ध्यान जो लावै॥

सब पर राम तपस्वी राजा।
तिनके काज सकल तुम साजा॥
और मनोरथ जो कोई लावै।
तासु अमित जीवन फल पावै॥

ह०

चारों युग परताप तुम्हारा।
है परसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु सन्तके तुम रखवारे।
असुर निकन्दन राम दुलारे॥

अष्टसिद्धि नवनिधिके दाता।
असवर दीन्ह जानकी माता॥
राम रसायन तुम्हरे पासा।
सादर तुम रघुपतिके दासा॥

चा०

तुम्हरे भजन रामको पावै।
जन्म जन्मके दुख बिसरावै॥
अन्तकाल रघुवरपुर जाई।
जहाँ जन्म हरि भक्त कहाई॥

और देवता चित्त न धरई।
हनुमत सेई सर्व सुख करई॥
संकट हरै मिटै सब पीरा।
जो सुमिरै हनुमत बल बीरा॥

जै जै जै हनुमान गुसाईं।
कृपा करो गुरुदेव की नाईं॥
यह शतवार पाठ कर जोई।
छूटै बंदि महा सुख होई॥

जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा।
होइ सिद्धि साखी गौरीशा॥
तुलसीदास सदा हरिचेरा।
कीजै दास हृदय मँह डेरा॥

स०

दोहा—पवन तनय संकट हरण, मंगल मूरति रूप
राम लषण सीता सहित, हृदय बसो सुर भूप ॥

॥ इति हनुमानचालीसा सम्पूर्ण ॥

* श्री हनुमतये नमः *

अथ संकट मोचन हनुमानाष्टक

* मत्तगयन्द छन्द *

बाल समय रवि लीलि लियो तब तीनहुं लोक भयो अँधियारो। ताहिसो त्रास भई जगको यह सङ्कट

स०

काहुसो जात न टारो ॥ देवन आई करी बिनती तब छाँड़ि दियो रवि कष्ट निवारो । को नहिं जानत है जगमें कपि सङ्कट मोचन नाम तिहारो ॥ १ ॥ बालिकी त्रास कपीस बसै गिरि जात महा प्रभु पंथ निहारो । चौंकि महामुनि श्राप दियो तब चाहिय कौन उपाय विचारो ॥ कैद्विजरूप ले आय महाप्रभु सो तुम तासुको संकट टारो । को ० ॥ २ ॥ अंगदके सङ्ग कीस अनेक गये सिय खोज कपीस उचारो । जीवत ना बचिहौं हमसों

मो०
१७१

जो विना सुधि लै इति को पगु धारो। हारि थके तट सिंधु सबै तब लय सियकी सुधि प्राण उबारो॥ को नहिं ०॥ ३॥ रावण त्रास दई सियको तब रक्षक ह्वैकर शोक निवारो। ताहि समय हनुमान महाप्रभु जाय महा रजनिचरमारो॥ माँगत सीय अशोकसो आगि सुदै प्रभु मुद्रिका शोक निवारो॥ को नहिं०॥ ४॥ बाण लग्यो उर लक्ष्मण के तब प्राण तज्यो सुतरावण मारो। लै गुह वैद्य सुखेन समेत तभी गिरि द्रोण सुबीर उपारो॥ लाय

स०

सजीवन हाथ दई तब लक्ष्मणके तुम प्राण उबारो
॥ को० ॥ ५ ॥ रावणयुद्ध अजान कियो तब नागकी
फाँस सबै सिर डारो। श्री रघुनाथ समेत सबै दल
मोह भयो अति संकट भारो। आनिखगेश तबै हनुमान
सो बन्धन काटिके कष्ट निवारो ॥ को० ॥ ६ ॥ बंधु
समेत जबै अहिरावण लै रघुनाथ पताल सिधारो।
देविहिं पूजि भली विधि सों बलि देहु सबै मिलि मन्त्र
विचारो ॥ जाय सहाय भये तबहीं अहिरावण सैन्य समेत

संहारो ॥ को० ॥ ७ ॥ काज किये बड़ देवनके तुम वीर महाप्रभु देख विचारो । कौन सो संकट मोहिं गरीब को जो तुमसो नहिं जात है टारो । बेगि हरो हनुमान महा प्रभु जो कछु सङ्कट होय हमारो ॥ को० ॥ ८ ॥

श्री रामनाम महात्म्य

द्वै बेर जाय द्वारिका त्रिवेणी जाय तीन बेर चार बेर काशी अंग गङ्गके अन्हायते। पांच बेर जमुना छै बेर जाय नीमसार सात बेर पुरस्करजी आचमन करायते। रामनाथ ज़गन्नाथ बद्री केदारनाथ दसों सुमेर सौ बेर पग धोयेते।
जेतो फल होइ कोटि तीर्थ स्नान करे तेतो फल होइ एक राम नाम गायेते ॥१॥

श्री रामचरित मानस महिमा

वालकाण्ड प्रभु पांय अयोध्या कटि मन मोहे।
उदर बनेउ आरण्य हृदय किषकिन्धा सोहे॥
लंक सुन्दर ग्रिवा बिन्द लङ्का कहि गायउ।
जेहि में रावण आदि निशाचर सर्व समायेउ॥
यहि बिधि तुलसीदास मन आहि अन्त लौं देखिये॥

श्रीमन्मानस राम तन ॥२॥

* श्री रामजी *

कृष्ण गोपाल गोपाल गाते चलो।
मनको विषयोंके विषसे बचाते चलो॥

देखना इन्द्रियों के न घोड़े भगें।
रात दिन इनको संयम के कोड़े लगें॥

अपने रथ को सुमार्ग चलाते चलो।
काम करते रहो नाम जपते चलो॥

पाप की वासनाओंसे बचते रहो।
नाम धन का खजाना बढ़ाते चलो॥
प्राण जाये मगर नाम भूलो नहीं।
दुःखमें तड़फो नहीं सुखमें फूलो नहीं॥
प्रेम भक्तिके आंसु बहाते चलो।
याद आयेगा प्रभु को कभी न कभी॥
तुम पायेगा दर्शन कभी न कभी॥
दास विश्वास मन में जमाते चलो॥

---

* श्रीगुरु चरण कमलेभ्यो नमः * श्रीसीतारामाभ्यां नमः *

श्रीगुरुवर आरती

अज्ञान तिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जन सलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येनः तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगं सीतासमारोपित वामभागम् ।
पाणौ महाशायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥

दुर्वादलं द्युति तनुं करुणाब्जनेत्रं

हेमाम्बरं वरविभूषण भूषिताङ्गम् ।

कन्दर्पकोटि कमनीय किशोर मूर्तिं

पूर्तिं मनोरथभवाम्भजि जानकीशम् ॥

मंगल आरती गुरुजी चरण की। गुरुजी चरण सीतारामजी चरण की ॥ मंगल आरती गुरुजी चरण की ॥१॥ धूप दीप नैवेद्य आरती, चन्दन पुष्प सों पूजा करण की ॥ मंगल आरती० ॥२॥ गुरुजीके चरणोंमें चिह्न

विराजे, जगमग जगमग ज्योति नखन की ॥ मंगल आरती० ॥३॥ चार आरती चित्तमें धारै, नौका भवनिधि पार करण की ॥ मंगल आरती० ॥४॥ कटि केहरि कोपीन विराजे युगल आरती जन सुघरन की । जन सुघरण रामा विषय हरण की । मंगल आरती० ॥५॥ मुख-मयंक की एक आरती, शोभा अमित अरुण अधरन की अरुण अधरन की बचन मधुरन की ॥ मंगल आरती० ॥६॥ सर्व अंग की सात आरती, हिय के दिव्य नयन उधरन की । नयन

उधरन रामा मंत्र श्रवण की। मंगल आरती० ॥७॥
तुलसी तिलक भाल छवि उपमा, प्रातकाल के सूर्य किरण की। सूर्य किरण हृदै कमल खिलन की। मंगल आरती० ॥८॥ सरयू जलको अर्घ दीजै, बार बार गुरुजी चरण परन की। मंगल आरती० ॥९॥ गुरुजी की सात परिक्रमा कीजै, दुख नाशै चौरासी भ्रमण की। मंगल आरती० ॥१०॥ गुरुजी के चरण चरणामृत लीजै डर छूटै जग जरा मरण की। मंगल आरती० ॥११॥ जो जन

गुरुजी की आरती गावें, मात पिता कुल तरणकी। मंगल आरती० ॥१२॥ जो जन गुरुजी की रामजी की आरती गावें, श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन पायें। दर्शन पायें रामा सुमन बरसायें। आरती० ॥१३॥

जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुं वेदहुं बड़भागी।

जे गुरु चरण रेणुशिर धरहीं,

ते जनु सकल विभव वस करहीं० ॥

* श्री गुरुवर आरती की जय जय सीताराम *

श्री जानकीजी की बधाई

वैशाख सुदी ६

हुई मिथिलेशके लाली बधाई है बधाई है।
नींव गढ़ लङ्क की हाली बधाई है बधाई है॥
गुणी गंधर्व गन आये ललीकै शुभ चरित गाये।
हुये सब ही के मन भाये बधाई है बधाई है॥
सकल सुर लोक की नारी नचै हों मन मगन भारी।
परस्पर देत शुभ गारी बधाई है बधाई है॥

बजाते देव गन बाजै मुनिन मिलि आरती साजैं।
लुटते द्रव्य महाराजा बधाई है बधाई है॥
हर्ष सब लोक में धाया खलों में शोक घन छाया।
भया सुर मुनि का मन भाया बधाई है बधाई है॥
सुयश सुर नाग मुनि गाते दान मन भावते पाते।
"कुमारहुँ" गाय हर्षाते बधाई है बधाई है॥

श्री सीताजीके प्रकट होने की समयकी स्तुति

वैशाख शुक्ल ६

भई प्रकट कुमारी भूमिविदारी जन हितकारी भयहारी,
अतुलित छवि भारी मुनिमन हारी जनक दुलारी सुकमारी।
सुन्दर सिंघासन तेहि पर आसन कोटि हुताशन द्युतिभारी,
सिर छत्र विराजैं सखीगन भ्राजैं निज निज काजैं करधारी।

सिर सिद्ध सुजाना हनैं निशाना चढ़ै विमाना समुदाई,
बर्षैं बहु फूला मंगल मूला अनुकूला सिय गुन गाई।
देखैं सब ठाढ़े लोचन गाढ़ै सुख बाढ़ै उर अधिकाई,
स्तुति मन करहिं पायन परहिं आनन्द भरहिं हर्षाई।

ऋषि नारद आये नाम सुनाये सुनि सुख पाये नृप रानी,
सीता असनामा पूरन कामा सब सुख धामा गुन खानी।
सिय सन मुनि राई विनय सुनाई समय सुहाई मृदु बानी,
नलिनि तनु लीजै चरित सो कीजै यह सुख दीजै नृपरानी।

सुनि मुनिवर बाणी सिय मुसकानी लीला ठानी सुखदाई,
सोवत जनु जागी रोवन लागी नृप बड़भागी उरलाई। १८८
दंपति अनुराग्यो प्रेम सो पाग्यो जेहि सुख लाग्यो मन लाई,
स्तुति सिय केरी प्रेम लतेरी वर्णिसुचेरि शिरनाई।
निज इच्छा मखभूमिते, प्रकट भइ सिय आय।
चरित किये पावन परम वरधन मोद निकाय॥

भजन
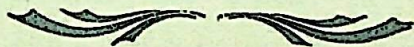
हमें निज धर्म पर चलना, बताती रोज रामायण।
सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रोज रामायण।।
जिन्हें संसार सागर से उतर कर पार जाना है।
उन्हें सुख से किनारे पर लगाती रोज रामायण।।
कहीं छवि विष्णु की बांकी, कहीं शङ्कर की है झांकी।
हृदय आनन्द झूले पर, झुलाती रोज रामायण।।

सरल कविता की कुञ्जों में, बना मन्दिर है हिन्दी का।
जहां प्रभुप्रेम का दर्शन कराती रोज रामायण ।।
कभी वेदों के सागर में, कभी गीता की गंगा में।
कभी रस 'बिन्दु' .. मनको डुबाती रोज रामायण ।।

प्रार्थना

रे मन प्रति स्वांस पुकार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ।
तन नौका की पतवार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥
जग में व्यापक आधार यही, जग में लेता अवतार यही ।
है निराकार साकार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥
ध्रुव को ध्रुवपद दातार यही, प्रह्लाद गले का हार यही ।
नारद वीणा का तार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे ॥

सब सुकृतों का आगार यही, गङ्गा यमुना की धार यही।
श्री रामेश्वर हरिद्वार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे॥
सज्जन का साहूकार यही, प्रेमी जन का व्यापार यही।
सुख 'बिन्दु' सुधा का सार यही, जय राम हरे घनश्याम हरे॥

१६२